अध्याय 1

11107CH01

समाज में सामाजिक संरचना, स्तरीकरण और सामाजिक प्रक्रियाएँ

परिचय

आपको याद होगा कि आपकी प्रारंभिक समाजशास्त्र की पुस्तक *समाजशास्त्र परिचय,* कक्षा XI की शुरुआत निजी समस्याओं तथा सामाजिक मुद्दों के आपसी संबंधों पर परिचर्चा से हुई थी। हमने यह भी देखा कि किस प्रकार व्यक्ति विभिन्न सामूहिकताओं से जुड़ा होता है जैसे—समूह, वर्ग, लिंग, जाति तथा जनजाति। वास्तव में आप में से प्रत्येक किसी एक समूह से ही नहीं बल्कि कई समूहों से जुड़े होते हैं। उदाहरणत: आप अपने दोस्तों, अपने परिवार और नातेदारी, वर्ग तथा लिंग, अपने देश तथा प्रदेश के सदस्य हैं। अत: प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक संरचना तथा स्तरीकरण में एक विशेष स्थान होता है (*समाजशास्त्र परिचय* पृष्ठ 28–35 देखिए)।

इसका यह अर्थ भी निकलता है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास सामाजिक संसाधनों को प्राप्त करने के विभिन्न तरीके हैं। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी किस विद्यालय में पढ़ने जाए यह उसके सामाजिक स्तर पर निर्भर करता है। ठीक इसी प्रकार वह किस प्रकार के वस्त्र पहनती/पहनता है; किस प्रकार का भोजन करती/करता है; अपने खाली समय में वह क्या करती/करता है; किस तरह की स्वास्थ्य सुविधाएँ उसे प्राप्त हैं; अर्थात सामान्य तौर पर उसकी संपूर्ण जीवनशैली। जैसेकि सामाजिक संरचना के संदर्भ में सामाजिक स्तरीकरण, व्यक्ति को कार्य करने हेतु बाध्य करता है।

समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य का एक मुख्य उद्देश्य व्यक्ति तथा समाज के द्वंद्वात्मक संबंधों को समझना है। आपको सी.राइट मिल की समाजशास्त्रीय कल्पना की व्याख्या याद होगी जहाँ उन्होंने व्यक्ति के जीवनवृत्त तथा समाज के इतिहास के आपसी संबंधों को स्पष्ट किया है। इस पाठ में, समाज और व्यक्ति के द्वंद्वात्मक संबंध को समझने के लिए यह आवश्यक है कि तीन मुख्य संकल्पनाओं (अवधारणाओं) यथा सामाजिक संरचना, सामाजिक स्तरीकरण तथा सामाजिक प्रक्रियाओं पर चर्चा की जाए। अगले कुछ अध्यायों में हम यह जानेंगे कि नगरीय तथा ग्रामीण समाज की सामाजिक संरचना किस प्रकार भिन्न है, और पर्यावरण तथा समाज

© NCERT not to be republished

के बीच व्यापक संबंधों का रूप क्या है? आखिरी के दो अध्यायों में हम पाश्चात्य सामाजिक विचारकों तथा भारतीय सामाजशास्त्रियों तथा उनके विचारों को समझेंगे जो हमें आगे सामाजिक संरचना, सामाजिक स्तरीकरण तथा सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने में मदद करेंगे।

मुख्य प्रश्न जिस पर इस पाठ में विचार किया जाना है कि किस हद तक व्यक्ति सामाजिक संरचना से बाध्य होता है और किस हद तक वह सामाजिक संरचना के अंतर्गत स्वतंत्र होता है? समाज में व्यक्ति की स्थिति अथवा सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था में उसका स्थान, उसकी व्यक्तिगत रुचियों को किस सीमा तक निर्धारित करती है। क्या सामाजिक संरचना तथा सामाजिक स्तरीकरण व्यक्ति की कार्यप्रणाली को प्रभावित करते हैं? किस प्रकार से व्यक्ति एक दूसरे से सहयोग, प्रतियोगिता तथा संघर्ष करते हैं तथा उसे वे क्या रूप देते हैं?

इस अध्याय में हम संक्षेप में 'सामाजिक संरचना' तथा 'सामाजिक स्तरीकरण' पर चर्चा करेंगे। आपने सामाजिक स्तरीकरण पर विस्तारपूर्वक चर्चा पिछली पुस्तक (समाजशास्त्र परिचय) के अध्याय 2 में की है। अब हम आगे बढ़ते हुए तीन मुख्य सामाजिक प्रक्रियाओं यथा सहयोग, प्रतियोगिता तथा संघर्ष पर चर्चा करेंगे। इनमें से प्रत्येक प्रक्रिया को समझने के लिए हम यह समझने तथा देखने की कोशिश करेंगे कि सामाजिक संरचना तथा सामाजिक स्तरीकरण किस प्रकार सामाजिक प्रक्रियाओं पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। दूसरे शब्दों में, किस प्रकार व्यक्तियों के मध्य तथा समूहों के मध्य सहयोग, प्रतियोगिता तथा संघर्ष होते हैं। यह सब कुछ सामाजिक संरचना तथा स्तरीकरण व्यवस्था में व्यक्तियों एवं समूह की स्थिति पर निर्भर करता है।

सामाजिक संरचना तथा सामाजिक स्तरीकरण

'सामाजिक संरचना' शब्द इस तथ्य को दर्शाता है कि समाज संरचनात्मक है अर्थात अपने विशिष्ट रूप में वह क्रमवार तथा नियमित है। जिस सामाजिक वातावरण में हम रहते हैं वह मात्र कुछ क्रियाओं एवं प्रघटनाओं का अनियमित मिश्रण नहीं है। लोगों का आचरण किस प्रकार का होता है तथा एक-दूसरे के प्रति उनके संबंध किस प्रकार के होते हैं—इसमें एक प्रकार की अंतर्निहित नियमितता अथवा प्रतिमान (पैटर्न) होता है। सामाजिक संरचना की संकल्पना इन्हीं नियमितताओं को इंगित करती है। एक बिंदु तक, समाज की संरचनात्मक विशेषताओं को एक इमारत की संरचनात्मक विशेषताओं के समकक्ष रखकर समझा जा सकता है। एक इमारत की दीवारें, ज़मीन तथा छत, सब मिलकर उस इमारत को एक विशेष आकार देती हैं।

पर यदि इस तुलना का प्रयोग ज़्यादा सख्ती से किया जाए तो यह रूपक अपने आप में गलतफ़हमी पैदा करने वाला हो सकता है। सामाजिक संरचना मानवीय क्रियाओं तथा संबंधों से बनती है। जो पक्ष इन्हें नियमितता प्रदान करता है, वह है अलग-अलग काल अवधि में एवं भिन्न-भिन्न स्थानों में इन क्रियाओं एवं संबंधों का लगातार दोहराया जाना। अत: सामाजिक विश्लेषण की प्रक्रिया में सामाजिक पुनरूत्पादन

© NCERT not to be republished

ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों की भिन्न प्रकार की इमारतें

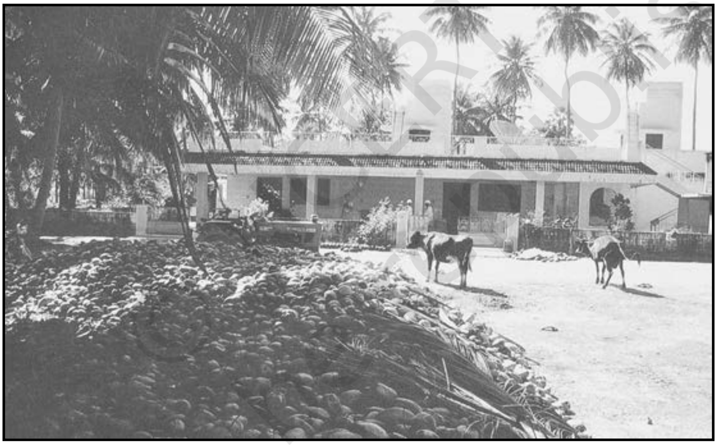

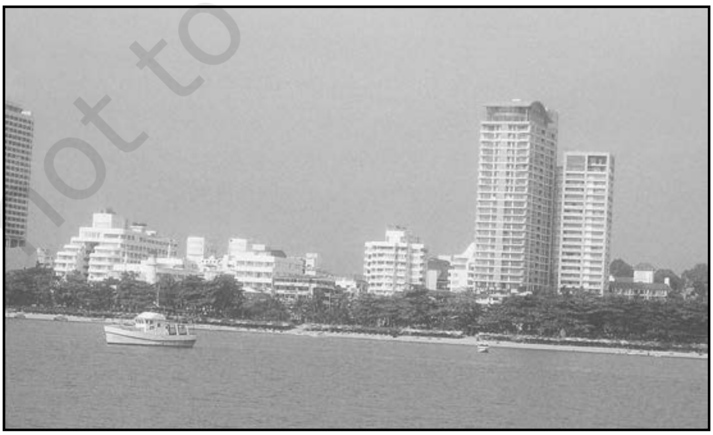

not to be republished

तथा सामाजिक संरचना एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए, एक विद्यालय तथा एक परिवार की संरचना को लेते हैं। विद्यालय में कुछ विशिष्ट प्रकार के क्रियाकलाप वर्षों से दोहराए जाते हैं जो आगे चलकर संस्थाएँ बनते हैं जैसे विद्यालय में दाखिले के तरीके, आचरण संबंधी नियम, वार्षिकोत्सव, प्रात:कालीन सभा और कहीं-कहीं विद्यालयी गीत। ठीक इसी प्रकार से परिवार में आचरण के कुछ मानक स्तर जैसे, विवाह के तौर-तरीके, संबंधों के अर्थ उम्मीदें तथा उत्तरदायित्व होते हैं। परिवार में वृद्ध सदस्यों की मृत्यु एवं विद्यालय से पुराने विद्यार्थियों का चले जाना एवं इनके स्थान पर नए सदस्यों का प्रवेश होता रहता है और यह संस्था चलती रहती है। पर हम यह भी जानते हैं कि परिवार तथा विद्यालय के अंदर परिवर्तन होते रहते हैं।

उपरोक्त परिचर्चा तथा क्रियाकलाप हमें यह समझने में मदद करता है कि मानव द्वारा निर्मित समाज उस इमारत की तरह होता है जिसकी प्रत्येक क्षण उन्हीं ईंटों से पुनर्रचना होती है जिनसे उसे बनाया गया है। जैसा कि हमने स्वयं देखा है कि मनुष्य विद्यालय तथा परिवार में संरचना की पुनर्रचना हेतु परिवर्तन करते हुए समूचे परिवर्तन को प्रस्तुत करता है। वे प्रतिदिन विभिन्न स्तरों पर पुनर्रचना के लिए सहयोग करते हैं। यह भी कम सच नहीं है कि उनमें एक दूसरे के साथ दूषित तथा क्रूर प्रतियोगिता भी होती है। सच्चाई यह है कि सहयोगात्मक व्यवहार के साथ ही साथ हम गंभीर प्रकृति के संघर्षों को भी देखते हैं और जैसा कि हम आगे देखेंगे कि सहयोग को ज़बरदस्ती लागू भी किया जाता है ताकि संघर्षों को छिपाया जा सके।

एमिल दुर्खाइम द्वारा आगे बढ़ाया जाने वाला एक मुख्य विषय यह (और उनके बाद में कई अन्य समाजशास्त्रियों द्वारा भी कार्य किया गया) है कि समाज अपने सदस्यों की क्रियाओं पर सामाजिक प्रतिबंध लगाते हैं। दुर्खाइम ने तर्क

क्रियाकलाप 1

अपने बड़े-बुजुर्गों (दादा/नाना) अथवा उनकी पीढ़ी के अन्य लोगों से बातचीत कर यह पता कीजिए कि परिवारों/विद्यालयों में किस प्रकार का परिवर्तन आया है तथा किन किन पक्षों में वे आज भी वैसे ही हैं।

पुराने चलचित्रों/धारावाहिकों/उपन्यासों में परिवारों के प्रस्तुतिकरण की तुलना समकालीन प्रस्तुतियों से कीजिए।

क्या आप अपने परिवार में सामाजिक आचरण के प्रतिमानों (पैटर्नस्) और नियमितताओं को समझते हैं? दूसरे शब्दों में, क्या आप अपने परिवार की संरचना का वर्णन कर सकते हैं?

विद्यालय को एक संरचना के रूप में आपके शिक्षक कैसे लेते हैं? इस पर उनसे विचार-विमर्श कीजिए। क्या छात्रों, शिक्षकों तथा कर्मचारियों को इस संरचना को बनाए रखने के लिए कुछ विशेष रूप में काम करना पड़ता है? क्या आप अपने विद्यालय अथवा परिवार में किसी प्रकार के परिवर्तन के बारे में सोच सकते हैं? क्या इन परिवर्तनों का विरोध हुआ? किसने इनका विरोध किया और क्यों?

© NCERT not to be republished

दिया कि व्यक्ति पर समाज का प्रभुत्व होता है। समाज व्यक्ति की कुल क्रियाओं से कहीं अधिक है; इसमें 'दृढ़ता' अथवा 'कठोरता' है जो भौतिक पर्यावरण की संरचना के समान है। सोचिए कि एक व्यक्ति ऐसे कमरे में खड़ा है जहाँ बहुत सारे दरवाज़े हैं। कमरे की संरचना व्यक्ति की संभावित क्रियाओं को बाध्य करती है। उदाहरण के तौर पर दीवारों तथा दरवाज़ों की स्थिति, प्रवेश तथा निकास के रास्तों को दर्शाती है। दुर्खाइम के अनुसार, सामाजिक संरचना, हमारी क्रियाओं को समानांतर रूप से बाध्य करती है, इसकी सीमा तय करती है कि हम एक व्यक्ति के रूप में क्या कर सकते हैं? यह हमसे 'बाह्य' है ठीक उसी प्रकार से जैसे कमरे की दीवारें होती हैं।

अन्य सामाजिक चिंतक जैसे कार्ल मार्क्स भी सामाजिक संरचना की बाध्यता पर बल देते हैं लेकिन साथ ही मनुष्य की सृजनात्मकता को महत्त्वपूर्ण मानते हैं जो सामाजिक संरचना को परिवर्तित भी करती है और उसे पुनः उत्पादित भी करती है। मार्क्स ने यह तर्क दिया कि मनुष्य इतिहास बनाता है, परंतु वह इतिहास निर्माण न तो उसकी इच्छा पर और न ही उसकी मनपसंद शर्तों पर आधारित होता है। अपनी इच्छानुसार नहीं और न ही अपनी मनपसंद शर्तों पर, बल्कि इतिहास का निर्माण उन ऐतिहासिक तथा संरचनात्मक स्थिति की उन बाध्यताओं तथा संभावनाओं के अंतर्गत होता है जहाँ वह जीवनयापन कर रहा है।

क्रियाकलाप 2

ऐसे कुछ उदाहरण सोचिए जो दोनों स्थितियों को प्रकट करते हों–किस प्रकार मनुष्य सामाजिक संरचना से बाध्य होता है तथा जहाँ व्यक्ति सामाजिक संरचना की अवहेलना करता है और उसे बदल देता है। अपनी पूर्व पुस्तक में समाजीकरण पर हुई परिचर्चा को याद कीजिए (पृष्ठ 88–89)।

दुर्खाइम के इस दृष्टिकोण को उनके प्रसिद्ध विवरण में दिया गया है –

जब मैं अपने कर्तव्यों का निर्वहन एक भाई, एक पति अथवा देश के नागरिक के रूप में करता हूँ तथा दिए गए अपने वचन को पूर्ण करता हूँ। मैं अपने दायित्वों को पूरा करता हूँ जिन्हें कानून तथा प्रथा में परिभाषित किया गया है तथा जो मुझसे तथा मेरी क्रियाओं से परे या बाह्य है .... ठीक इसी प्रकार, भक्त जन्म से ही, पूर्व स्वीकृत, अपने धार्मिक जीवन की मान्यताओं तथा क्रियाओं को पहचान लेता है; अगर उनका अस्तित्व उसके जन्म से पूर्व था, तो इसका अर्थ है कि उनका अस्तित्व उसके बाहर है। मैं अपने विचारों को प्रेषित करने के लिए जिन चिह्नों का प्रयोग करता हूँ, मैं अपने कर्जों को चुकाने के लिए जिस मुद्रा का प्रयोग करता हूँ, मैं अपने व्यापारिक संबंधों के लिए जिन क्रेडिट उपकरणों का प्रयोग करता हूँ, मैं अपने पेशे में जिन कर्मों का अनुनयन करता हूँ इत्यादि–इनका मेरे द्वारा उपयोग किए जाने पर भी ये स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार की टिप्पणी इनमें से प्रत्येक के लिए की जा सकती है।

© NCERT not to be republished

अब हम इस स्तर पर सामाजिक स्तरीकरण की उस संकल्पना की पुनरावृत्ति करना चाहेंगे जो प्रारंभिक पुस्तक के अध्याय 2 का भाग है।

सामाजिक स्तरीकरण से अभिप्राय समाज में समूहों के बीच संरचनात्मक असमानताओं के अस्तित्व, भौतिक अथवा प्रतीकात्मक पुरस्कारों की पहुँच से है। हालाँकि प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में सामाजिक स्तरीकरण विद्यमान है, परंतु आधुनिक समाज धन तथा शक्ति की असमानताओं के कारण पहचाने जाते हैं। एक तरफ़ जहाँ आधुनिक समाज में स्तरीकरण के सर्वाधिक प्रचलित रूपों में वर्ग-विभाजन है, वहीं दूसरी ओर प्रजाति तथा जाति, क्षेत्र तथा समुदाय, जनजाति तथा लिंग इत्यादि सामाजिक स्तरीकरण के आधार बने हैं।

आपको याद होगा कि सामाजिक संरचना में सामाजिक व्यवहार के निश्चित प्रतिमान (पैटर्न) निहित होते हैं। सामाजिक स्तरीकरण एक विस्तृत सामाजिक संरचना के भाग के रूप में असमानता के निश्चित प्रतिमान द्वारा पहचाना जाता है। असमानता कोई ऐसा अवयव नहीं है जो समाज में विभिन्न व्यक्तियों के बीच आकस्मिक रूप से वितरित हो। यह तो व्यवस्थित रूप से विभिन्न प्रकार के सामाजिक समूहों की सदस्यता से जुड़ी हुई है। एक समूह के सदस्यों की विशेषताएँ समान होती हैं, और यदि वे उच्च स्थिति में हैं तो उनका प्रयत्न होगा कि उनकी विशेषाधिकृत स्थिति उनके बच्चों को मिल जाए। स्तरीकरण की संकल्पना, तब उस विचार को संदर्भित करती है जहाँ समाज का विभाजन एक निश्चित प्रतिमान के रूप में समूहों में होता है, तथा यह संरचना पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है (जयराम 1987:22)।

असमान रूप से बाँटे गए लाभों के अंतर को समझना भी आवश्यक है। लाभ के तीन बुनियादी प्रकार हैं जिसका विशेषाधिकार प्राप्त समूहों द्वारा उपभोग किया जाता है:

(अ) जीवन अवसर—वे सभी भौतिक लाभ जो प्राप्तकर्ता के जीवन की गुणवत्ता को सुधारते हैं—उनमें केवल संपत्ति तथा आय जैसे आर्थिक लाभों को ही शामिल नहीं किया जाता बल्कि अन्य सुविधाओं; जैसे—स्वास्थ्य, रोज़गार, सुरक्षा तथा मनोरंजन को भी शामिल किया जाता है।

(ब) सामाजिक प्रस्थिति—मान-सम्मान तथा समाज के अन्य व्यक्तियों की नज़रों में उच्च स्थान।

(स) राजनैतिक प्रभाव—एक समूह द्वारा दूसरे समूह अथवा समूहों पर प्रभुत्व जमाना अथवा निर्णय निर्धारण में प्रमाणाधिक्य प्रभाव अथवा निर्णयों से अत्यधिक लाभ उठाना।

आगे होने वाली चर्चा में हम उपरोक्त तीन सामाजिक प्रक्रियाओं की तरफ़ आपका ध्यान आकर्षित करेंगे और बताएँगे कि किस प्रकार सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न आधार; जैसे—लिंग अथवा वर्ग सामाजिक प्रक्रियाओं को बाधित करते हैं। व्यक्ति तथा वर्गों को मिलने वाले अवसर तथा संसाधन जो प्रतियोगिता, सहयोग अथवा संघर्ष के रूप में सामने आते हैं—इन्हें सामाजिक संरचना तथा सामाजिक स्तरीकरण के द्वारा आकार दिया जाता है। साथ ही मनुष्य पूर्वस्थित संरचना तथा स्तरीकरण में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

© NCERT not to be republished

समाजशास्त्र में सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने के दो तरीके

अपनी प्रारंभिक पुस्तक कक्षा XI की *समाजशास्त्र परिचय* में आपने सामान्य ज्ञान की सीमाओं को समझा है। समस्या यह नहीं है कि सामान्य ज्ञान आवश्यक रूप से गलत ही हो परंतु यह इसका परीक्षण नहीं हुआ है तथा इसे हलके रूप में लिया जाता है। इसके विपरीत, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक मुद्दे पर सवाल किए जाते हैं और किसी भी मुद्दे को ऐसे ही नहीं मान लिया जाता है। अतः यह केवल ऐसी व्याख्या से संतुष्ट होकर शांत नहीं होगा जिससे पता चलता है कि मनुष्यों में प्रतियोगिता अथवा सहायता या संघर्ष जैसा भी मामला हो – क्योंकि ऐसा करना मनुष्य का स्वभाव होता है। इस प्रकार की मान्यता के पीछे यह व्याख्या है कि आंतरिक तथा सार्वभौमिक रूप से यह मनुष्य की प्रकृति है कि इस प्रकार की प्रक्रियाओं का लेखा-जोखा रखा जाए। हालाँकि, जैसा हमने पहले देखा है, समाजशास्त्र मनोवैज्ञानिक अथवा प्रकृतिवादी व्याख्याओं से संतुष्ट नहीं होता है। (देखें पृष्ठ 8-9, पहली पुस्तक) समाजशास्त्र सहयोग, प्रतिस्पर्धा तथा संघर्ष की प्रक्रियाओं की व्याख्या समाज की वास्तविक संरचना के अंतर्गत करना चाहता है।

क्रियाकलाप 3

अपने प्रतिदिन के जीवन में सहयोग, प्रतियोगिता तथा संघर्ष के उदाहरण ढूँढ़िए।

हमने पिछली पुस्तक में चर्चा की थी कि समाज में किस प्रकार विभेद तथा बहुलता की समझ व्याप्त है। (पृष्ठ 27-28, 41)। विभिन्न संस्थाओं की समझ, चाहे वह परिवार हो, अर्थव्यवस्था अथवा सामाजिक स्तरीकरण या सामाजिक नियंत्रण हो। हमने देखा कि किस प्रकार प्रकार्यवादी तथा संघर्ष के परिप्रेक्ष्य के अनुसार संस्थाओं की समझ में भिन्नता है। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि ये दोनों संदर्भ इन प्रक्रियाओं को थोड़ा हट कर समझना चाहते हैं। परंतु दोनों, कार्ल मार्क्स (सामान्यतः संघर्ष के परिप्रेक्ष्य से जुड़े हुए) तथा एमिल दुर्खाइम (सामान्यतः प्रकार्यवादी संदर्भ में पहचाने जाते हैं) यह मानकर चलते हैं कि मनुष्यों को अपनी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहयोग करना होता है तथा अपने और अपनी दुनिया के लिए उत्पादन और पुनः उत्पादन करना पड़ता है।

संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में इस बात पर बल दिया गया कि किस प्रकार सहयोग के प्रकारों ने एक ऐतिहासिक समाज को दूसरे ऐतिहासिक समाज में परिवर्तित कर दिया। उदाहरणतः यह देखा जा सकता है कि सामान्यतः सरल समाजों में जहाँ अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता था, वहाँ व्यक्तियों तथा समूहों में आपसी सहयोग था और वे वर्ग, जाति अथवा प्रजाति में नहीं बँटे थे। परंतु जिस समाज में अतिरिक्त उत्पादन होता था, चाहे वे जमींदार हो अथवा पूँजीपति, प्रभावशाली वर्ग का अतिरिक्त उत्पादन पर अधिकार होता था तथा सहयोग भी संभावित संघर्ष तथा प्रतियोगिता से जुड़ा होता था। संघर्ष का दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि समूहों तथा व्यक्तियों का स्थान उत्पादन प्रणाली के संबंधों में भिन्न तथा असमान होता है। अतः कारखाने के मालिक तथा मज़दूर अपने प्रतिदिन

विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाएँ

के कार्यों में सहयोग करते हैं परंतु कुछ हद तक उनके हितों में संघर्ष उनके संबंधों को परिभाषित करते हैं।

हमारी संघर्ष के परिप्रेक्ष्य संबंधी समझ यह बताती है कि जहाँ समाज जाति, वर्ग अथवा पितृसत्ता के आधार पर बँटा होता है वहीं कुछ समूह सुविधावंचित हैं तथा एक दूसरे के प्रति भेदभावमूलक स्थिति बरतते हैं। इससे भी आगे, प्रभावशाली समूहों में यह स्थिति सांस्कृतिक मानदंडों, ज़्यादातर ज़बरदस्ती अथवा हिंसा द्वारा भी उत्पन्न की जाती है। जैसा कि आप आगे आनेवाले अनुच्छेदों में देखेंगे कि प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य इस प्रकार के मानदंडों अथवा संस्तुतियों की भूमिका की प्रशंसा करने में नहीं चूकता। परंतु इन सबके प्रकार्यों को समाज की संपूर्णता के रूप में समझाता है, न कि उस संदर्भ में जहाँ प्रभावशाली समूहों द्वारा समाज को नियंत्रित किया जाता है।

प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य का सरोकार मुख्य रूप से समाज में 'व्यवस्था की आवश्यकता' से है – जिन्हें कुछ प्रकार्यात्मक अनिवार्यताएँ, प्रकार्यात्मक अपेक्षा तथा पूर्वापेक्षाएँ कहा जाता है। ये विस्तृत रूप में उन शर्तों को पूरा करती हैं जो व्यवस्था के अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं (इसलिए इन्हें अस्तित्व में बनाए रखा जाता है तथा इनको नष्ट होने से बचाया जाता है), जैसे–

- नए सदस्यों का समाजीकरण
- संचार की साझा प्रक्रिया
- व्यक्ति की भूमिका निर्धारण के तरीके

आप अच्छी तरह से जानते हैं कि किस प्रकार प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य इस तथ्य पर आधारित है कि समाज के विभिन्न भागों का एक प्रकार्य अथवा भूमिका होती है जो संपूर्ण समाज की प्रकार्यात्मकता के लिए जरूरी होती है। इस संदर्भ में सहयोग, प्रतियोगिता तथा संघर्ष को प्रत्येक समाज की सार्वभौमिक विशेषता के रूप में देखा जा सकता है, जो समाज में रहने तथा इच्छापूर्ति करने वाले विभिन्न व्यक्तियों की अनिवार्य अन्तःक्रियाओं का परिणाम है।

चूँकि इस परिप्रेक्ष्य का मुख्य बिंदु व्यवस्था को बनाए रखना है, प्रतिस्पर्धा तथा संघर्ष

डोली में बैठकर ससुराल जाते हुए दुल्हन

© NCERT not to be republished

को इस दृष्टि से भी समझा जाता है कि अधिकतर स्थितियों में ये बिना ज़्यादा हानि एवं कष्ट के सुलझ जाते हैं तथा साथ ही ये समाज की भी विभिन्न प्रकार से मदद करते हैं।

समाजशास्त्रीय अध्ययनों ने यह भी दिखाया है कि किस प्रकार मानदंडों तथा समाजीकरण के प्रतिरूप अधिकतर इस बात का ध्यान रखते हैं कि एक विशेष सामाजिक प्रणाली सतत बनी रहे, चाहे वह एक विशेष समूह के हितों की विरोधी ही क्यों न हो। दूसरे शब्दों में, ***सहयोग, प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष के आपसी संबंध अधिकतर जटिल होते हैं तथा ये आसानी से अलग नहीं किए जा सकते।***

यह समझने के लिए कि सहयोग और संघर्ष किस प्रकार अनुलग्नित हैं, तथा 'बाध्य' एवं 'स्वैच्छिक' सहयोग में क्या अंतर है, आइए, अपने जन्म (नेटल) के परिवार में संपत्ति पर स्त्री का अधिकार जैसे विवादास्पद मुद्दे पर नज़र डालें। समाज के विभिन्न हिस्सों में यह जानने के लिए कि जन्म की संपत्ति के संबंध में उनका क्या दृष्टिकोण है, एक अध्ययन किया गया (पृष्ठ 47, 52–53 *समाजशास्त्र परिचय* देखिए)। स्त्रियों की एक अच्छी खासी संख्या ने (41.7%) संपत्ति के अपने अधिकार पर बोलते हुए अपनी बेटी के प्रेम तथा बेटी के लिए अपने प्रेम के विषय को उठाया। परंतु इस विषय पर भावात्मक न होकर आशंका पर बल देते हुए कहा कि वे संपूर्ण अथवा अंशतः किसी भी प्रकार का अपनी जन्म की संपत्ति पर दावा नहीं करेंगी क्योंकि वे डरती थीं कि ऐसा करने से भाइयों के साथ उनके संबंधों में कड़वाहट आ जाएगी या भाभियाँ उनसे घृणा करने लगेंगी और परिणामस्वरूप अपने पिता के घर उनका आना-जाना बंद हो जाएगा। यह दृष्टिकोण एक प्रभावशाली रूपक को दिखाता है जहाँ एक ओर स्त्री संपत्ति से इनकार करती है . . . तो दूसरी ओर एक स्त्री संपत्ति पर अपना 'हक जमाने वाली', कंजूस तथा चालाक समझी जाती है। संवेदनाओं में एक करीबी संपर्क होता है तथा प्रतिवर्ती रूप में अपने जन्म के परिवार का एक भाग बने रहने तथा उसकी उन्नति में सहायक होने और मुसीबत की घड़ी में काम आने की इच्छा बनी थी।

क्रियाकलाप 4

विचार कीजिए–क्या विस्तृत मानक बाध्यताओं के कारण महिलाएँ अपने आपको संघर्ष अथवा प्रतिस्पर्धा से अलग रखती हैं अथवा सहयोग देती हैं। क्या वे पुरुषों के उत्तराधिकार के मानदंड से सहयोग इसलिए करती हैं कि यदि वे ऐसा नहीं करेंगी तो भाइयों के प्रेम से वंचित हो जाएँगी?

क्रियाकलाप 2 आपको समझने में मदद करेगा कि सहयोगात्मक व्यवहार को समाज के गहरे संघर्षों की उपज के रूप में भी देखा जा सकता है। परंतु जब इन संघर्षों की खुलकर अभिव्यक्ति नहीं होती अथवा इन्हें खुली चुनौती नहीं दी जाती तो यह छवि बनती है कि कहीं कोई संघर्ष नहीं है, केवल सहयोग ही विद्यमान है। उपरोक्त परिस्थितियों को समझाने के लिए प्रकार्यवादी 'व्यवस्थापन' शब्द का प्रयोग करते हैं, जहाँ महिला अपने पितृ परिवार में संपत्ति के अपने अधिकार पर किसी प्रकार का दावा करना पसंद नहीं करेगी। संघर्षों के रहते हुए भी समझौता एवं सह-अस्तित्व की कोशिश के रूप में इसे देखा जा सकता है।

क्रियाकलाप 5

कुछ अन्य सामाजिक व्यवहारों के बारे में सोचिए जो सहयोगात्मक दिखाई देते हों परंतु समाज के गहरे संघर्षों को अपने अंदर छिपाए हों।

सहयोग तथा श्रम विभाजन

सहयोग का विचार मानव व्यवहार की कुछ मान्यताओं पर आधारित है। यह तर्क दिया जाता है कि मनुष्य के सहयोग के बिना मानव जाति का अस्तित्व कठिन हो जाएगा। आगे यह तर्क दिया जाता है कि यहाँ तक कि जानवरों की दुनिया में भी हम सहयोग के प्रमाण देख सकते हैं, चाहे वे चींटियाँ हों, मधुमक्खियाँ हों अथवा स्तनपायी पशु। परंतु पशुओं की दुनिया से तुलना सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए। हम समाजशास्त्र की दो भिन्न सैद्धांतिक परंपराओं का प्रयोग इस बिंदु के विश्लेषण के लिए करेंगे जिनका एमिल दुर्खाइम तथा कार्ल मार्क्स ने प्रतिनिधित्व किया।

अधिकतर समय समाजशास्त्र में इस मान्यता को सहमति नहीं मिली कि मनुष्य का स्वभाव घिनौना तथा क्रूर होता है। एमिल दुर्खाइम ने इस दृष्टिकोण कि, "आदिम मानव जाति की एकमात्र उत्तेजना यही थी कि उनकी भूख तथा प्यास की हमेशा पूरी संतुष्टि हो", के विपक्ष में इस प्रकार के तर्क दिए–

> ऐसे विचारकों ने नैतिक जीवन के आवश्यक अवयवों को नज़रअंदाज किया, वे हैं, संयमित प्रभाव का प्रयोग जो समाज अपने सदस्यों पर करता है, जो उनके अस्तित्व तथा चुनाव के संघर्ष की पाश्विक क्रिया को संयमित तथा शून्य कर देता है। जहाँ कहीं भी समाज है, वहाँ पर परार्थवाद है, क्योंकि वहाँ एकता है। अतः हम परार्थवाद को मनुष्यता के प्रारंभ से ही देखते हैं और यहाँ तक कि असंयमित रूप में भी (दुर्खाइम 1933)।

दुर्खाइम के लिए एकता समाज का नैतिक बल है, तथा यह सहयोग और इस तरह समाज के प्रकार्यों को समझने के लिए बुनियादी अवयव है। श्रम विभाजन की भूमिका जिसमें सहयोग निहित है, यथार्थ रूप से समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। श्रम विभाजन एक ही समय में जहाँ प्रकृति का नियम है वही दूसरी ओर मनुष्य व्यवहार का नैतिक नियम भी है।

दुर्खाइम ने यांत्रिक तथा सावयवी एकता में अंतर स्पष्ट किया जो क्रमशः पूर्व औद्योगिक तथा जटिल औद्योगिक समाजों की विशेषता थी। यांत्रिक एकता संहति का एक रूप है जो

© NCERT not to be republished

बुनियादी रूप से एकरूपता पर आधारित है। इस समाज के अधिकांश सदस्य एक जैसा जीवन व्यतीत करते हैं, कम से कम विशिष्टता अथवा श्रम–विभाजन को हमेशा आयु तथा लिंग से जोड़ा जाता है, यह समाज की मुख्य्य विशेषता है। इस समाज के सदस्य परस्पर अपनी मान्यताओं तथा संवेदनाओं, अंतरविवेक तथा चेतना से जुड़े होते हैं। सावयवी एकता सामाजिक संहति का वह रूप है जो श्रम–विभाजन पर आधारित है तथा जिसके फलस्वरूप समाज के सदस्यों में सह निर्भरता है। जैसे–जैसे व्यक्ति विशिष्टता हासिल करता है वैसे–वैसे दूसरों पर अधिक निर्भर होता जाता है। कृषि आधारित जीविका में लगा एक परिवार अपने जैसा काम करने वालों की थोड़ी या बगैर किसी मदद के जीवित रह सकता है परंतु कपड़ा अथवा कार उद्योग में लगा व्यापारी अन्य विशिष्ट कर्मचारियों के बिना जीवित नहीं रह सकता जो उनकी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करते हैं।

कार्ल मार्क्स भी मनुष्य जीवन तथा पशु जीवन में अंतर स्पष्ट करते हैं। जहाँ दुर्खाइम परार्थवाद तथा एकता को मानव दुनिया का विशिष्ट लक्षण मानते हैं वहीं मार्क्स चेतना पर बल देते हैं। वे लिखते हैं–

> मनुष्यों तथा पशुओं में अंतर चेतना, धर्म तथा किसी अन्य वस्तु के आधार पर किया जा सकता है। जैसे ही वे अपनी आजीविका के साधन उत्पन्न करने लगते हैं, वे स्वयं को पशुओं से भिन्न समझना प्रारंभ कर देते हैं–यह प्रयास उनके भौतिक संगठन द्वारा निश्चित होता है। आजीविका के साधनों के उत्पादन से मनुष्य परोक्ष रूप से अपने भौतिक जीवन को प्रजनित करता है (मार्क्स 1972:37)।

मार्क्स का उपर्युक्त कथन कठिन लग सकता है परंतु सहयोग मनुष्य जीवन को पशु जीवन से किस प्रकार अलग करता है, को समझने में मदद करेगा। मनुष्य केवल सहयोग के लिए समायोजन तथा सामंजस्य ही नहीं करते बल्कि इस प्रक्रिया में समाज को बदलते भी हैं। उदाहरण के लिए, सदियों से पुरुषों तथा महिलाओं ने प्राकृतिक बाध्यताओं में अपने आप को समायोजित किया है। विभिन्न तकनीकी आविष्कारों ने मनुष्य के जीवन को ही नहीं बदला है बल्कि समय के साथ प्रकृति को भी बदल दिया है। इस प्रकार से मनुष्य सहयोग करते हुए निष्क्रिय रूप से केवल समायोजन और सामंजस्य ही नहीं करते बल्कि उस प्राकृतिक तथा सामाजिक संसार को भी बदल देते हैं जहाँ वे समायोजन करते हैं। हमने पिछली पुस्तक *समाजशास्त्र परिचय* में संस्कृति पर एक अध्याय में देखा कि किस प्रकार भारतीयों को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अनुभवों के कारण अंग्रेज़ी भाषा के साथ समायोजन, सामंजस्य तथा सहयोग करना पड़ा था। लेकिन इस प्रक्रिया में 'हिंगलिश' का उद्‌भव एक जीवित सामाजिक यथार्थ है (पृष्ठ 81–82)।

यद्यपि दुर्खाइम ने प्रकार्यवादी संदर्भ पर तथा मार्क्स ने संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में सहयोग पर बल दिया, परंतु दोनों के विचार अलग हैं। मार्क्स के अनुसार ऐसे समाज में जहाँ वर्ग विद्यमान है वहाँ सहयोग स्वैच्छिक नहीं होता। उनका तर्क है,

"सामाजिक शक्ति अर्थात बहुस्तरीय उत्पादक शक्तियाँ, जिनका उद्‌भव विभिन्न व्यक्तियों के सहयोग तथा श्रम विभाजन द्वारा होता है, इन व्यक्तियों को लगता है कि उनका सहयोग स्वैच्छिक न होकर स्वाभाविक होता है, यह स्वयं की सम्मिलित ताकत का परिणाम न होकर एक अनजान ताकत का परिणाम है जो उनके बाहर स्थित है" (मार्क्स 1972:53)। मार्क्स ने 'अलगाव' शब्द का प्रयोग श्रम की मूर्त अन्तर्वस्तु तथा श्रम के उत्पाद पर मज़दूरों के नियंत्रण में कमी के संदर्भ में किया है। दूसरे शब्दों में, मज़दूर अपने कार्य को किस प्रकार व्यवस्थित करे, इस पर उनका नियंत्रण नहीं होता; और इसी प्रकार वे अपने श्रम के उत्पादन पर से भी अपना नियंत्रण खो देते हैं। हम यहाँ दो विपरीत उदाहरणों की चर्चा कर सकते हैं। सन्तुष्टि तथा सृजनात्मकता का भाव जो एक बुनकर या कुम्हार या लुहार को अपने काम से मिलता है तथा दूसरी ओर एक फैक्ट्री में काम करने वाले मज़दूर जिसका एकमात्र कार्य पूरे दिन में लीवर खींचना या बटन दबाना होता है। इन हालातों में सहयोग आरोपित होता है।

प्रतिस्पर्धा–अवधारणा एवं व्यवहार के रूप में

जैसा कि सहयोग के विषय में हुआ, प्रतियोगिता की संकल्पना इस विचार के साथ आगे बढ़ती है कि प्रतिस्पर्धा विश्वव्यापी तथा स्वाभाविक है। हम यह जान चुके हैं कि किस प्रकार समाजशास्त्र की व्याख्या प्रकृतिवादी व्याख्या से भिन्न है, अत: यहाँ यह आवश्यक है कि एक सामाजिक तत्व के रूप में प्रतिस्पर्धा को समझा जाए जिसका समाज में उद्‌भव हुआ है तथा एक निश्चित ऐतिहासिक समय में यह प्रभावी रही है। समकालीन समय में यह सर्वप्रमुख विचार है तथा अधिकतर यह समझना मुश्किल होता है कि कहीं ऐसा समाज हो सकता है जहाँ प्रतिस्पर्धा एक मार्गदर्शक ताकत न हो।

यह दंतकथा एक स्कूल अध्यापक, जो अपने अनुभवों को अपने बच्चों के साथ अफ्रीका के एक पिछड़े स्थान से बता रहा है, हमारा ध्यान उस तथ्य की ओर आकर्षित करता है जहाँ प्रतिस्पर्धा को स्वयं समाजशास्त्रीय रूप में न कि स्वाभाविक वृत्ति के रूप में समझाना था। यह दंतकथा अध्यापक की इस मान्यता पर आधारित है कि बच्चे दौड़ने की प्रतिस्पर्धा के विचार से प्रसन्न होंगे, जहाँ विजेता को एक चॉकलेट इनाम के रूप में दिया जाएगा। आश्चर्य, उनके इस सुझाव ने बच्चों में किसी प्रकार के उत्साह का संचरण नहीं किया बल्कि दूसरी तरफ दुश्चिंता और दुख को बढ़ा दिया। जाँच, पड़ताल करने पर आगे बताया कि उनकी ऐसे खेलों में अरुचि है जहाँ 'विजेता' तथा 'पराजित' होंगे। यह उनके आनंद करने के विचार के विरुद्ध है उनके लिए आनंद का विचार आवश्यक तौर पर सहयोग तथा सामूहिक अनुभव है न कि प्रतिस्पर्धा जहाँ पुरस्कार कुछ लोगों को वंचित करता है तथा एक अथवा कुछ को पुरस्कृत करता है।

समकालीन विश्व में प्रतिस्पर्धा एक प्रमुख मानदंड तथा परिपाटी है। शास्त्रीय समाजवैज्ञानिकों

जैसे एमिल दुर्खाइम तथा कार्ल मार्क्स ने आधुनिक समाजों में व्यक्तिवाद तथा प्रतिस्पर्धा के विकास को एक साथ आधुनिक समाजों में देखा है। आधुनिक पूँजीवादी समाज जिस प्रकार कार्य करते हैं वहाँ दोनों का एक साथ विकास सहज है। यहाँ अत्यधिक कार्यकुशलता तथा लाभ के कमाने पर बल दिया जाता है। पूँजीवाद की मौलिक मान्यताएँ हैं–

(क) व्यापार का विस्तार,
(ख) श्रम विभाजन,
(ग) विशेषीकरण, और
(घ) बढ़ती उत्पादकता।

स्व–धारणीय संवृद्धि की ये प्रक्रियाएँ पूँजीवाद के केंद्रीय विचार से बढ़ावा प्राप्त करती हैं। बाज़ार क्षेत्र में विद्यमान मुक्त प्रतिस्पर्धा में तार्किक व्यक्ति, अपने लाभों को अधिक बढ़ाने की कोशिश में लगा रहता है।

प्रतिस्पर्धा की विचारधारा पूँजीवाद की सशक्त विचाराधारा है। इस विचारधारा का तर्क है कि बाज़ार इस प्रकार से कार्य करता है कि अधिकतम कार्यकुशलता सुनिश्चित हो सके। उदाहरण के लिए, प्रतिस्पर्धा यह सुनिश्चित करती है कि सर्वाधिक कार्यकुशल फर्म बची रहे। प्रतिस्पर्धा यह सुनिश्चित करती है कि अधिकतम अंक पाने वाला छात्र अथवा बेहतरीन छात्र को प्रसिद्ध कॉलेजों में दाखिला मिल सके और फिर बेहतरीन रोज़गार प्राप्त हो सके। इन सभी स्थितियों में 'बेहतरीन' होना सबसे बड़ा भौतिक पुरस्कार सुनिश्चित करता है।

क्रियाकलाप 6

27 फीसदी आरक्षण अन्य पिछड़े वर्गों को देने एवं सवर्ण जातियों में आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण के सरकार के निर्णय पर भारत में ज़ोरदार वाद–विवाद हुए।

अखबारों, पत्रिकाओं तथा टी.वी. पर इस विषय के पक्ष तथा विपक्ष में दिए गए विभिन्न तर्कों को एकत्रित कीजिए।

विद्यालयों में 'ड्रॉप आउट' की दर, विशेषकर प्राइमरी विद्यालयों में, पर जानकारी हासिल कीजिए। (पिछली पुस्तक की पृष्ठ संख्या 65–67 देखिए)

अधिकतर निम्न जाति के विद्यार्थी स्कूल से ड्रॉप आउट होते हैं तथा शिक्षा के उच्च संस्थानों में अधिकतर उच्च जातियों का वर्चस्व है, इस संदर्भ में सहयोग, प्रतिस्पर्धा तथा संघर्ष की संकल्पना पर परिचर्चा करें।

ऐसे विचार कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से प्रतिस्पर्धा करना चाहता है, को अन्य प्रकृतिवादी व्याख्याओं की भाँति आलोचनात्मक दृष्टि से समझा जाना चाहिए। (प्रारंभिक पुस्तक का पृष्ठ 9 देखिए) प्रतिस्पर्धा, पूँजीवाद के जन्म के साथ ही प्रबल इच्छा के रूप में फली–फूली। अगले पृष्ठ पर बॉक्स में दिए गए गद्यांश को पढ़िए तथा परिचर्चा कीजिए।

जे. एस. मिल जैसे उदारवादियों ने यह महसूस किया कि प्रतिस्पर्धा के प्रभाव अधिकतर नुकसानदायक होते हैं। यद्यपि उन्होंने महसूस किया कि आधुनिक प्रतिस्पर्धा का विवेचन

© NCERT not to be republished

'प्रत्येक की लड़ाई प्रत्येक के खिलाफ़, लेकिन साथ ही यह सबके लिए लड़ाई' है; यह इस अर्थ में कि आर्थिक प्रतिस्पर्धा निम्नतम लागत पर अधिकतम उत्पाद है। इससे भी आगे, 'व्यक्तिवाद का समाज में तीव्र विस्तार एवं विभिन्न प्रकार के हित, जो पूरे समूह के सदस्यों को एक साथ जोड़े रहते हैं, यह विचार तभी जीवित रहता है जब व्यक्ति पर प्रतिस्र्पा मूलक संघर्ष की आवश्यकताओं को थोप दिया जाता है।'

प्रतिस्पर्धा तथा पूँजीवाद के तहत उन्नीसवीं शताब्दी की संपूर्ण मुक्त व्यापार अर्थव्यवस्था, आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने में आवश्यक हो सकती है। अमेरीकी अर्थव्यवस्था के अत्यंत तीव्र गति से विकास को वहाँ प्रतिस्पर्धा की अधिकतम उपस्थिति के गुण के रूप में देखा जा सकता है। परंतु फिर भी हम प्रतिस्पर्धा के दायरे या प्रतियोगी भावना की तीव्रता को विभिन्न समाजों में आर्थिक विकास की दर के साथ सकारात्मक सह संबंध का रूप देने में कठिनाई महसूस करते हैं। वहीं दूसरी तरफ़ यह माने जाने के भी कारण हैं कि प्रतिस्पर्धा के कुछ बुरे प्रभाव भी हैं (बोटोमोर 1975:174-5)।

क्रियाकलाप 7

इस विषय पर वाद-विवाद का आयोजन कीजिए - 'प्रतिस्पर्धा समाज के लिए सकारात्मक तथा आवश्यक हैं।' 'प्रतिस्पर्धा का विभिन्न विद्यार्थियों पर क्या प्रभाव पड़ता है' - इस विषय पर अपने स्कूल के अनुभवों के आधार पर निबंध लिखिए।

यह विचारधारा मान कर चलती है कि व्यक्ति बराबरी के स्तर पर प्रतिस्पर्धा करता है, अर्थात प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रस्थिति, शिक्षा, रोज़गार अथवा प्रतिस्पर्धा हेतु समान संसाधन रहते हैं। परंतु जैसा कि स्तरीकरण अथवा असमानता पर की गई पूर्व चर्चा दिखाती है, व्यक्ति को समाज में भिन्न प्रकार से अवस्थित किया गया है। यदि भारत में बच्चों की अधिकतम संख्या विद्यालय में नहीं जाती अथवा वे आज या कल पढ़ाई छोड़ देते हैं तो ऐसी स्थिति में वे हमेशा के लिए प्रतिस्पर्धा से बाहर हो जाते हैं।

क्रियाकलाप 8

विभिन्न अवसरों को पहचानिए जब हमारे समाज में एक व्यक्ति को प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। आप स्कूल में प्रवेश से प्रारंभ करते हुए आगे जीवन में आने वाले विभिन्न अवस्थाओं को ले सकते हैं।

संघर्ष तथा सहयोग

संघर्ष शब्द का अर्थ है हितों में टकराहट। हमने पहले ही देखा है कि किस प्रकार से संबद्ध सिद्धांतवादी विश्वास करते हैं कि संसाधनों की कमी समाज में संघर्ष उत्पन्न करती है क्योंकि उन संसाधनों को पाने तथा उस पर कब्ज़ा करने के लिए प्रत्येक समूह संघर्ष करता है। संघर्ष के आधार भिन्न-भिन्न होते हैं। ये वर्ग अथवा जाति, जनजाति अथवा लिंग, नृजातीयता अथवा धार्मिक समुदायों में हो सकते हैं। एक नौजवान छात्र के नाते आप समाज में विद्यमान संघर्षों की विविधता से परिचित हैं।

© NCERT not to be republished

विभिन्न संघर्षों के पैमाने तथा प्रकृति यद्यपि भिन्न होती है।

क्रियाकलाप 9

सोचिए, आज विश्व में वे कौन से विभिन्न प्रकार के संघर्ष हैं जो विद्यमान हैं। व्यापारिक स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों तथा राष्ट्रों के समूह के बीच संघर्ष हैं। एक ही राष्ट्र के अंदर कई प्रकार के संघर्ष विद्यमान हैं। इन सबकी एक सूची बनाइए और चर्चा कीजिए कि किस रूप में वे समान तथा किस रूप में वे भिन्न हैं।

अधिकतर सामान्य ज्ञान की सोच के अनुसार समाज में संघर्षों की स्थिति नयी है। समाजशास्त्रियों ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में संघर्ष की प्रकृति तथा रूप सदैव परिवर्तित होते रहे हैं। परंतु संघर्ष किसी भी समाज का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा सदैव से रहा है। सामाजिक परिवर्तन तथा लोकतांत्रिक अधिकारों पर सुविधावंचित तथा भेदभाव का सामना कर रहे समूहों द्वारा हक जताना संघर्षों को और उभारता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि संघर्ष पहले विद्यमान नहीं थे। बॉक्स में दिए गए उद्धरण इस पर बल देते हैं।

नए तथा पुराने के बीच संघर्ष आज विकासशील देशों के मंच बने हैं। प्राचीन प्रणाली नवीन ताकतों का मुकाबला नहीं कर पा रही है, न ही लोगों की नवीन आशाओं तथा आकांक्षाओं का प्रतिनिधत्व करती है। परंतु यह स्थिति मृतप्राय नहीं हैं–सच्चाई यह है कि ये अभी भी जीवित हैं। संघर्ष बेकार की बहस, विभ्रांति, विसंगति, तथा कई मौकों पर खून-खराबे को जन्म देता है। इन परिस्थितियों में समाजशास्त्रियों के लिए यह बेहद आवश्यक होता है कि वे अपने पुराने-अच्छे दिनों को याद करें। परंतु एक पल का परावर्तन उन्हें यह विश्वास दिला देगा कि पुरानी पद्धति संघर्ष से वंचित नहीं थी और उसने जनसंख्या के व्यापक भाग पर अमानुषिक अत्याचार किए। सैद्धांतिक दृष्टिकोण, जहाँ संघर्ष को व्याधिकीय माना जाता है अथवा जहाँ विज्ञान के नाम पर एक विशेष मूल्य के रूप में संतुलन का निवेश किया जाता है, परंतु यह स्थिति विकासशील समाजों के अध्ययन में रुकावट सिद्ध होती है।

(**स्रोतः** श्रीनिवास, एम.एन., 1972, *सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया,* पृष्ठ 159-160, ओरियण्ट लोंगमैंन, नयी दिल्ली।)

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि संघर्ष विसंगति अथवा प्रत्यक्ष झड़प के रूप में दिखाई देते हैं जहाँ ये खुल कर प्रकट किए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर भूमि संसाधनों पर गहरे संघर्षों की प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया का परिणाम है कृषक आंदोलन। आंदोलन की अनुपस्थिति का अर्थ संघर्ष की अनुपस्थिति नहीं है। अतः इस अध्याय में संघर्ष, अनिवार्य सहयोग तथा प्रतिरोध के संबंधों पर बल दिया गया है।

आइए, कुछ संघर्षों पर जो समाज में विद्यमान हैं तथा प्रतिस्पर्धा, सहयोग और संघर्ष के आपसी सहसंबंधों पर भी विचार करें। हम यहाँ केवल दो उदाहरणों को लेंगे। प्रथम, परिवार तथा घर है और दूसरा, भूमि–आधारित संघर्ष।

© NCERT not to be republished

पारंपरिक तौर पर परिवार तथा घर सामंजस्यपूर्ण इकाई के रूप में देखे जाते रहे हैं जहाँ सहयोग प्रमुख प्रक्रिया थी तथा परार्थवाद मनुष्य के आचरण के प्रेरणात्मक सिद्धांत थे। पिछले तीन दशकों से महिलावादी विश्लेषकों द्वारा इस मान्यता पर प्रश्न उठाए जा रहे हैं। अमर्त्य सेन जैसे विद्वानों ने भी बलात् सहयोग की संभावना को माना है।

> सिर्फ विभिन्न दलों को ही सहयोग से फ़ायदा नहीं है; उनके व्यक्तिगत क्रियाकलापों को भी प्रत्यक्ष सहयोग के रूप में लेना होगा, छोटे-मोटे संघर्षों के विद्यमान होने पर भी ... यद्यपि 'सामाजिक तकनीकी' के चुनाव में हितों का संजीदा संघर्ष हो सकता है, पारिवारिक संगठनों की प्रकृति के लिए यह आवश्यक है कि इन संघर्षों को आपसी सहयोग द्वारा निबटाया जाए, साथ ही संघर्ष को विचलित व्यवहार के रूप में देखा जाए।

चूँकि संघर्षों को प्रत्यक्ष रूप से संप्रेषित नहीं किया जाता अत: यह देखा गया है कि मध्यवर्ग तथा अधीनस्थ वर्ग, चाहे घर में महिलाएँ हों या कृषक समाज में किसान, संघर्षों में समायोजन तथा सहयोग पाने के लिए व्यक्ति एवं समूह विभिन्न प्रकार की रणनीति बनाते हैं। अनेक समाजशास्त्रीय अध्ययन अप्रत्यक्ष संघर्ष तथा प्रत्यक्ष सहयोग को दिखाते हैं जो सामान्य हैं। नीचे दिया गया उद्धरण घर में महिलाओं के व्यवहार तथा अंत:क्रिया पर किए गए कई अध्ययनों से लिया गया है।

> भौतिक दवाब तथा प्रेरणा का सहयोग तथा उससे बढ़कर वितरण तथा वितरण प्रक्रिया में प्रत्यक्ष संघर्ष के बहुत कम साक्ष्य हैं। इसके बदले निर्णय लेने, आवश्यकताएँ तथा प्राथमिकताएँ (आयु, लिंग तथा जीवन चक्र) सोपानिक हैं, ऐसे सोपान जिसका स्त्री तथा पुरुष दोनों समर्थन करते हैं। अत: स्त्रियाँ अनेक विशेषताओं को सतत रूप से अर्जित करती हुई दिखाई देती हैं– घरेलू वस्तुओं के वितरण में विभेदीकृत कार्य, अपने आने वाले समय में सुरक्षा के लिए अन्य घरेलू संबंधों तथा संसाधनों तक पहुँच न मिलने के कारण, यह उनके भौतिक हित में होता है कि वे बेटे को मान्यता दें, जो इस संस्कार की महत्त्वपूर्ण विशेषता है, तथा अपने अनियमित भविष्य के बीमा के लिए अपने बेटों को सहयोगी रूप में जीतने के लिए, उनके लिए 'स्वार्थरहित' समर्पण ही उनका निवेश होता है। 'मातृ परहितवादिता', उत्तरी भारत के मैदानों में, बेटों को लेकर पूर्वाग्रहित है तथा इसे स्त्री के पितृसत्तात्मक जोखिम के प्रत्युत्तर के रूप में देखा जा सकता है। स्त्री पूरी तरह से शक्तिहीन नहीं है, परंतु, पुरुष के निर्णय लेने की ताकत के समक्ष वह अप्रत्यक्ष ही रहती है। विश्वसनीय दोस्तों का उपयोग (रिश्तेदार या पड़ोसी) अपनी तरफ़ से छोटे-मोटे व्यापार करने में, पैसों का छुपकर लेन-देन, परदा तथा मातृत्व जैसी लैंगिक विचारधारा पर बातचीत करना वे रणनीतियाँ हैं जिनके आधार पर स्त्रियों ने पुरुष की शक्ति का प्रतिरोध किया है (अब्दुल्ला तथा जीडेंस्टीन, 1982; वाईट 1992)। उनके प्रतिरोध का यह गोपनीय रूप घर के बाहर सहयोग के विकल्पों की कमी तथा खुले संघर्ष से जुड़े सहवर्ती ज़ोखिमों को दिखाता है (कबीर 1996:129)।

not to be republished © NCERT

समाजशास्त्रीय प्रश्नात्मक परंपरा को ध्यान में रखते हुए मान लिए जाने वाले तथ्यों पर इस अध्याय में परीक्षण किए गए तथा इस पाठ में सहयोग, प्रतिस्पर्धा तथा संघर्ष की प्रक्रियाओं की आलोचनात्मक रूप से जाँच की गई। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से ये प्रक्रियाएँ 'स्वाभाविक' नहीं मानी जातीं। यह उन्हें आगे अन्य सामाजिक विकास से जोड़ता है। नीचे दिए गए अनुच्छेद में आप भूमि संबंधों तथा भारत के भूदान–ग्रामदान आंदोलन के विषय में पढ़ेंगे। बॉक्स को पढ़िए और देखिए कि समाज में सहयोग किस प्रकार समाजशास्त्रीय रूप में तकनीक तथा उत्पादन की आर्थिक व्यवस्था से जुड़ा है।

क्रियाकलाप 10

नीचे दिए गए भूमि संघर्ष से संबंधित विवरण को ध्यानपूर्वक पढ़िए। इसके विभिन्न सामाजिक वर्गों को पहचानिए तथा शक्ति तथा संसाधनों की भूमिका पर ध्यान दीजिए।

उपसंहार

इस पाठ का मुख्य उद्देश्य एक ओर सामाजिक तथा स्तरीकरण के संबंधों को समझना है तो दूसरी ओर सामाजिक प्रक्रिया के रूप में सहयोग, प्रतिस्पर्धा तथा संघर्ष को। आपने देखा होगा कि तीनों सामाजिक प्रक्रियाएँ भिन्न हैं; लेकिन अधिकांशतः वे एक साथ मौजूद होती हैं; तथा एक दूसरे से कभी छिपे और कभी खुले रूप में संबद्ध और विद्यमान होती हैं; जैसा कि बलात् सहयोग के संदर्भ में हुई चर्चा से पता चलता है।

भूमि संघर्ष

सन् 1956 में हरबक्श, एक राजपूत ने नत्थू अहीर (पटेल) से सौ रुपए अपने दो एकड़ ज़मीन को गिरवी (अनौपचारिक) रख कर्ज़ लिया। उसी वर्ष हरबक्श की मृत्यु हो गई और उसके उत्तराधिकारी गनपत ने सन् 1958 में ज़मीन को वापस लेने का दावा किया। इसके लिए उसने दो सौ रुपए देने की पेशकश की। नत्थू ने गनपत को ज़मीन वापस करने से मना कर दिया। गनपत इसके लिए कानूनी कार्रवाई का सहारा नहीं ले सका क्योंकि यह लेन–देन आय–व्यय रिकॉर्ड में कहीं दर्ज़ नहीं था। इन परिस्थितियों के अधीन गनपत ने हिंसा का सहारा ले सन् 1959 (ग्रामदान के एक वर्ष पश्चात्) में ज़बरन भूमि पर अधिकार कर लिया। गनपत, चूँकि स्वयं एक पुलिस कांस्टेबल था, अतः इस मामले में उसने अफसरों पर काफी प्रभाव डाला। जब पटेल फुलेरा गया (पुलिस थाना हेडक्वार्टर) तो उसे पुलिस स्टेशन ले जाया गया और ज़बरन उसे इस बात पर राज़ी किया गया कि वह ज़मीन गनपत को वापिस लौटा देगा। इसके पश्चात् ग्रामवासियों की एक सभा बुलाई गई तब पटेल को पैसा दिया गया और गणपत को अपनी ज़मीन वापिस मिली।

स्रोतः ओम्मेन, टी.के., 1972 : *करिश्मा, स्टेबिलिटी एण्ड चेंज–एन एनालिसिस ऑफ भूदान–ग्राम दान मूवमेंट इन इंडिया,* पेज–88., थॉमसन प्रेस, नयी दिल्ली।

तकनीक के विस्तार ने भी सहयोग की आवश्यकता को कम किया है। उदाहरण के लिए, चरस चलाने के लिए (कुओं से सिंचाई करने वाली एक घरेलू विद्या), दो जोड़ी बैल तथा चार व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। एक साधारण किसान चार बैलों का खर्च नहीं उठा सकता अथवा एक औसत घर में शायद ज़रूरत जितने आदमी न हों। ऐसी स्थिति में वे बैल तथा आदमी दूसरे घरों (रिश्तेदार, पड़ोसी, दोस्त आदि) से मंगवाते हैं। वैसी ही सेवाओं को देने के बदले में। परंतु यदि चरस को रहट (पर्शियन व्हील) से बदल दिया जाए तो रहट, जिस पर भारी पूँजी निवेश की आवश्यकता पड़ती है, तब मात्र एक जोड़ी बैल तथा एक व्यक्ति की आवश्यकता इसे चलाने में पड़ती है। सिंचाई के संदर्भ में सहयोग की आवश्यकता को, भारी पूँजी निवेश तथा सक्षम तकनीक के कारण कम कर दिया। अतः किसी प्रणाली में तकनीकी स्तर व्यक्तियों तथा समूहों के बीच सहयोग की आवश्यकता को निर्धारित करता है। (ओम्मेन 1972:88)

स्त्रोतः ओम्मेन, टी.के., 1972 : *करिश्मा, स्टेबिलिटी एण्ड चेंज–एन एनालिसिस ऑफ भूदान–ग्राम दान मूवमेंट इन इंडिया,* पेज–88., थॉमसन प्रेस, नयी दिल्ली।

शब्दावली

परहितवाद–सिद्धांततः बिना किसी लाभ के दूसरों के हित के लिए काम करना।

अलगाव–मार्क्स ने इस अवधारणा का प्रयोग मज़दूरों का अपने श्रम तथा श्रम उत्पाद पर किसी प्रकार के अधिकार न होने के संदर्भ में किया है। इससे मजदूरों की कार्य के प्रति रुचि समाप्त होने लगती है।

प्रतिमानहीनता–दुर्खाइम के लिए, सामाजिक स्थिति जहाँ व्यवहार को पथप्रदर्शित करने वाले मानदंड नष्ट हो जाते हैं; व्यक्ति बिना सामाजिक बाध्यता अथवा पथप्रदर्शन के रह जाता है। एक नियमहीनता की स्थिति।

पूँजीवाद–वह आर्थिक प्रणाली, जहाँ उत्पादन के साधन पर निजी अधिकार होता है तथा जिसका प्रयोग बाज़ार व्यवस्था में लाभ कमाना है, जहाँ श्रम मजदूरों द्वारा किया जाता है।

श्रम विभाजन–कार्य का विशिष्टीकरण, जिसके माध्यम से विभिन्न रोज़गार उत्पादन प्रणाली से जुड़े होते हैं। प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में श्रम विभाजन होता है विशेषकर पुरुषों को दिए गए कार्य तथा महिलाओं द्वारा किए गए कार्य। औद्योगीकरण के विकास के साथ श्रम विभाजन और जटिल हो गया, अन्य किसी भी प्रकार के उत्पादन की तुलना में। आधुनिक विश्व में श्रम विभाजन का क्षेत्र अंतरराष्ट्रीय हो गया है।

© NCERT not to be republished

प्रभुत्वशाली विचारधारा–विचार तथा मान्यताएँ जो प्रभुत्वशाली समूहों के हितों की रक्षा करते हैं। ऐसी विचारधारा प्रत्येक समाज में पाई जाती है जहाँ विभिन्न वर्गों में असमानताएँ हों। विचारधारा की संकल्पना शक्ति से जुड़ती है, चूँकि वैचारिक प्रणाली भिन्न शक्तियों को वैध बनाती है जो विभिन्न समूहों में सन्निहित होते हैं।

व्यक्तिवाद–वह सिद्धांत अथवा चिंतन जो समूह के स्थान पर व्यक्तियों की स्वायत्तता को महत्त्व देता है।

मुक्त व्यापार/उदारवाद–वह राजनैतिक तथा आर्थिक नज़रिया, जो इस सिद्धांत पर आधारित है कि सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था में अहस्तक्षेपीय नीति अपनाई जाए तथा बाज़ार एवं संपत्ति मालिकों को पूरी छूट दे दी जाए।

यांत्रिक एकता–दुर्खाइम के अनुसार, परंपरागत संस्कृति में सरल श्रम विभाजन इसकी विशेषता है। चूँकि समाज के अधिकतर सदस्य एक जैसे कार्यों में लगे रहते हैं अतः वे एक-दूसरे के साथ सामान्यतः समान प्रकार के अनुभव तथा मान्यताओं से बँधे होते हैं।

आधुनिकता–18वीं तथा 19वीं शताब्दी की सामाजिक प्रक्रिया जो विशिष्टता, जटिलता तथा गत्यात्मकता के गुणों के कारण प्रसिद्ध हुई और जो वास्तव में परंपरागत जीवन से अलग थी।

सावयवी एकता–दुर्खाइम के अनुसार, एकता के अंतर्गत समाज व्यक्ति की आर्थिक निर्भरता तथा दूसरों के कार्यों की महत्ता से बँधा होता है। चूँकि यहाँ श्रम-विभाजन अत्यंत जटिल होता है अतः लोग एक-दूसरे पर अधिक से अधिक आश्रित होते हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को वह उत्पाद चाहिए जिसका उत्पादन दूसरे व्यक्ति करते हैं। आर्थिक बदलाव तथा अंतर्निर्भरता के सहसंबंध इस प्रकार की स्थिति में सामाजिक एकमतता बनाने में मदद करते हैं।

सामाजिक बाध्यता–हम जिस समूह अथवा समाज के भाग होते हैं वे हमारे व्यवहार पर प्रभाव छोड़ते हैं। दुर्खाइम के अनुसार सामाजिक बाध्यता सामाजिक तथ्य का एक विशिष्ट लक्षण है।

संरचना–मुख्य रूप से किसी संगठन की बनावट एवं प्रतिमान (पैटर्न) को इंगित करना है, जो कुछ हद तक मानव व्यवहार को निर्देशित या बाध्य करता है।

अभ्यास

1. कृषि तथा उद्योग के संदर्भ में सहयोग के विभिन्न कार्यों की आवश्यकता की चर्चा कीजिए।
2. क्या सहयोग हमेशा स्वैच्छिक अथवा बलात् होता है? यदि बलात् है, तो क्या मंजूरी प्राप्त होती है अथवा मानदंडों की शक्ति के कारण सहयोग करना पड़ता है? उदाहरण सहित चर्चा करें।
3. क्या आप भारतीय समाज से संघर्ष के विभिन्न उदाहरण ढूँढ़ सकते हैं? प्रत्येक उदाहरण में वे कौन से कारण थे जिसने संघर्ष को जन्म दिया? चर्चा कीजिए।

© NCERT not to be republished

4. संघर्ष को किस प्रकार कम किया जाता है इस विषय पर उदाहरण सहित निबंध लिखिए।
5. ऐसे समाज की कल्पना कीजिए जहाँ कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है, क्या यह संभव है? अगर नहीं तो क्यों?
6. अपने माता-पिता, बड़े-बुजुर्गों तथा उनके समकालीन व्यक्तियों से चर्चा कीजिए कि क्या आधुनिक समाज सही मायनों में प्रतिस्पर्धा है अथवा पहले की अपेक्षा संघर्षों से भरा है और अगर आपको ऐसा लगता है तो आप समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में इसे कैसे समझाएँगे?

संदर्भ

अब्दुल्लाह, टी. तथा एस. जीडेंस्टीन, 1982. *विलेज मेन ऑफ़ बांग्लादेश:प्रॉस्पेक्टस फ़ॉर चेंज.* परगामॉन प्रेस, ऑक्सफोर्ड।

बॉटोमोर, टी.बी., 1975. *सोशयोलॉजी एज़ सोशल क्रिटीसीज़्म.* जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन लि., लंदन।

दुर्खाइम एमिल, 1933. द *डिवीज़न ऑफ़ लेबर इन सोसायटी.* ए फ्री प्रेस (पेपरबैक), द मैकमिलन कंपनी, न्यूयार्क।

जयराम, एन., 1987. *इंट्रोडक्टरी सोशयोलॉजी.* मैकमिलन इंडिया लि., दिल्ली।

हेल सिल्विया, एम. 1990. *कॉट्रोवर्सिस इन सोशयोलॉजी:ए कनेडियन इंट्रोडक्शन,* लोंगमैन ग्रुप्स, लंदन।

मार्क्स कार्ल तथा फ्रेडरिक ऐंजेल्स. 1974. द *जर्मन आइडियोलॉजी,* सिलेक्टेड वर्क्स, भाग-1, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, मास्को।

सेन, अमर्त्य, 1990. 'जेंडर एण्ड कोऑपरेटिव कॉनफ्लिक्ट्स' इन *परसिस्टेन्ट इनइक्विलिटीज़* (संपा.), II, टिंकर, पी.पी. 123-49, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड।

सिंह, योगेंद्र, 1973. *मॉडर्नाइजेशन ऑफ इंडियन ट्रेडिशन.* थॉमसन प्रेस, नयी दिल्ली।

श्रीनिवास, एम. एन., 1972. *सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया.* ओरियंट लोंगमैन, नयी दिल्ली।

ओम्मेन, टी. के., 1972. *करिश्मा, स्टेबिलीटी एण्ड चेंज:एन ऐनालिसीस ऑफ़ भूदान-ग्रामदान मूवमेंट इन इंडिया.* थॉमसन प्रेस, नयी दिल्ली।

वाईट, एस. सी., 1992. *आरग्यूइंग विद द क्रोकोडाइल, जेंडर, एण्ड क्लास इन बांग्लादेश.* जेड बुक्स, लंदन।

© NCERT not to be republished